भा० दि० जैन संघ पुस्तकमाला का पञ्चम-पुष्प

श्री हरिषेणाचार्य-रचित

बृहत्कथाकोश

भाग १

अनुवादकर्ता—
श्री पं० राजकुमार शास्त्री साहित्याचार्य
प्रोफेसर दि० जैन कालिज बड़ौत (मेरठ)

प्रकाशक—
भारतवर्षीय दि० जैन संघ, मथुरा

प्रकाशक—
मंत्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैन संघ
चौरासी, मथुरा

प्रथम बार
द्वितीय आसाढ, २४७६
मूल्य ढाई रुपया

मुद्रक—
शान्तिलाल जैन,
नवभारत प्रेस,

प्रकाशकीय

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सघ अपने जन्म कालसे ही एक कार्यशील सस्था रही है। प्रारम्भमें इसका कार्य जैनधर्म पर किये जाने वाले आक्षेपोको निराकरण करके जनतामे फैले हुए अज्ञानको दूर करना मात्र था। इसके बाद इसी उद्देश्यको लक्ष्यमे रखकर एक प्रचार विभागकी स्थापना की गई। आज भी इसके प्रचारक भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशोमें पहुचकर जनतामें फैले हुए अज्ञानको यथाशक्ति दूर करनेमें प्रयत्नशील रहते है और इसका मुखपत्र 'जैनसन्देश' प्रति सप्ताह सर्वत्र पहुचकर इस कर्तव्यमे योगदान देनेमे सहायक होता है। मथुराके पास चौरासी नामक तीर्थक्षेत्रपर संघ-भवनमे सस्थाका प्रधान कार्यालिय तथा एक विशाल पुस्तका-लय है, जिसमे प्रकाशित पुस्तको और ग्रन्थोका अच्छा संग्रह है।

चूकि इस सस्थाका प्रधान लक्ष जैनधर्मका प्रचार रहा है, अत इसके अन्तर्गत एक ट्रैक्ट विभाग प्रारम्भसे ही चालू था जिसमें समयोपयोगी आवश्यक ट्रैक्टोका प्रकाशन होता था। सन् १९४१ मे प्रकाशन विभागको बढानेका विचार हुआ और सघ ग्रन्थमाला तथा संघ पुस्तक मालाके नामसे दो मालाएँ चालू की गई। सघ ग्रन्थमालाका प्रारम्भ सिद्धान्त ग्रन्थ श्री जयधवलजीके प्रकाशनसे हुआ। इसके दो खण्ड प्रकाशित हो चुके है। पुस्तक मालामे अब तक ४ पुस्तके

प्रकाशित हुई है, जिनमे 'जैनधर्म' नामकी पुस्तक उल्लेखनीय है। एक वर्षमे ही इसके दो सस्करण प्रकाशित हो चुके है और दूसरा सस्करण भी समाप्त प्राय है।

प्रस्तुत पुस्तक बृहत्कथाकोशका प्रथम भाग ह। मूल ग्रन्थ सस्कृतमे है और सिंधी जैन सिरीज (भारतीय विद्याभवन) बम्बईसे प्रथमबार उसका प्रकाशन हुआ है। उसी परसे यह हिन्दी अनुवाद कराया गया है। एतदर्थ हम उसके संचालकोके आभारी है। हिन्दीमे यह ग्रन्थ पहली बार ही प्रकाशित हो रहा है, जो चार भागोंमें समाप्त होगा। यद्यपि अनुवादका कार्य प० राजकुमारजी साहित्याचार्यने किया है, जो एक अच्छे विद्वान् तथा सुलेखक है, किन्तु अनेक व्यासगोंमे फंसे रहनेके कारण वे अपने अनुवादका सपादन नही कर सके। अत· पुस्तकको प्रेसमें दे चुकनेके पश्चात् मुझे ही यथावकाश इस कार्यको करना पडा। मै चाहता था कि अनुवादकी भाषा और भी सरल तथा सुसम्बद्ध होती तो अच्छा होता। अस्तु,

आजकल जन साधारणमे कथा साहित्यका बहुत प्रचार है। प्रस्तुत पुस्तककी कथाएं धार्मिक दृष्टिसे लिखी गई होने पर भी रोचक है और उनमे प्राचीन भारतीय सस्कृतिका चित्रण है। अतः मनोरंजन होनेके साथ ही साथ इनसे सत्शिक्षा भी यथेष्ट मिलती है। आशा है पाठक इसे पसन्द करेंगे।

भदैनी, बनारस

मंत्री
कैलाशचन्द्र शास्त्री

कथा-सूची

——:०.——

बृहत्कथाकोश

१. राजकुमारकी कथा

किसी समय भद्रपुरमे जिनचन्द्र नामका राजा रहता था। अपने प्रतापसे उसने शत्रुओको जीत लिया था। वह बडा सत्यवादी था और प्रत्येक दिन पात्रोको दान किया करता था। इस राजाके दो रानिया थी। एक जिनदत्ता और दूसरी जिनमती। दोनो ही खूब सुन्दर थी और राजा इन्हे हृदयसे स्नेह करता था।

एक समय जिनदत्ताके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम सूरदत्त रक्खा गया। सूरदत्त थोड़े ही दिनोमे अत्यन्त शूरवीर, गभीर, वलवान् और शस्त्र-शास्त्र आदि विद्याओमे निष्णात हो गया। इधर जिनमतीके भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम जिनदत्त रक्खा गया। जिनदत्त हाथी-घोडे आदिकी सवारीमें अत्यन्त चतुर था, लेकिन भोग-विलासमे आसक्त रहनेसे उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था।

इस प्रकार जिनचन्द्र नरेश सुखपूर्वक काल-यापन कर रहा था कि इतनेमे एक दिन शत्रुओने आकर उसके भद्रपुरको घेर लिया। राजाने कठोर-हृदय म्लेच्छोके द्वारा अपनी राजधानीको घिरी हुई समझकर उनसे मोरचा लेनेके लिए अपने पुत्र जिनदत्तको उनके पास भेजा। पर, म्लेच्छोने उसे क्षण भरमे पराजित कर दिया और उसके

समस्त सैनिकोको मार डाला। इसलिए जिनदत्त समर-क्षेत्रसे भागकर अपने नगरमे आ गया।

जब जिनचन्द्रने देखा कि जिनदत्त युद्ध-भूमिसे भाग आया है और उसका मुख-कमल श्री-हीन हो गया है तो उसे चिन्ता-पिशाचीने घेर लिया। लेकिन ज्योही सूरदत्तने पिताको चिन्तातुर देखा, वह बोला—पिता जी! मुझे आज्ञा दीजिये। मै म्लेच्छोके साथ युद्ध करने जाता हूँ। 'एवमस्तु' कहकर जिनचन्द्रने उसे जानेकी आज्ञा दे दी। सूरदत्त तुमुल कोलाहलसे दिशाओको गुजित करता हुआ म्लेच्छोंके निकट जा पहुचा और उनसे कहने लगा—अरे दुराचारी दुष्टो! अब तुम हमारा सामना करो।

जब म्लेच्छोने देखा कि एक दुर्धर वीर सामना करनेके लिए ललकार रहा है तो उन दुष्टोने उसे घेर लिया और चारो ओर सेनाका व्यूह बाध दिया।

सूरदत्तने तलवारोंकी धारोके प्रहारसे युद्धमे उनकी सेनाको जीत लिया और पताकावलीसे सुशोभित अपने नगरमे प्रवेश किया।

राजाको इस समाचारसे बडा हर्ष हुआ। उसने यह सोच कर कि सूरदत्तने शत्रुओको जीत लिया है, और विजयश्रीने इसे ही वरण किया है, उसका नाम जितशत्रु रख दिया। उसने राजाओकी साक्षीमे सुवर्णनिर्मित जल-लशोसे जितशत्रुका अभिषेक किया और उसे युवराज पद दे दिया।

इस प्रकार प्रत्येक गाव, नगर और देशमे लोगोके मुहसे दिनरात जितशत्रुकी सुन्दर कहानी सुनाई पड़ने लगी।

एक बार जितशत्रुकी सभामे किसीने बडे स्पष्ट शब्दोंमे कहा कि जितशत्रुसे बढ कर शूर न अब तक हुआ है और न

आगे होगा। उसकी इस प्रकारकी उत्कट वाणी सुनकर जिनदत्तने उससे कहा—अरे म्लेच्छोंको पराजित कर देनेमे उसकी क्या वहादुरी है जिसका तुम इतना ढिंढोरा पीट रहे हो। वास्तविक वीर तो वे पुण्यात्मा, महावली, गुणी और निर्मलबुद्धि वाले मुनि है जो निरन्तर क्रोध, मान, मद, माया, लोभ, काम और साधारण जनोसे दु सह घोर परीषहोकी सेनाका दमन करते है।

जिनदत्तके मुँहसे यह वात सुन कर सूरदत्तको वडा वैराग्य हुआ और उसने श्रीधर मुनिराजके पास दीक्षा ले ली।

जिस प्रकार इस व्यवहार-कुशल राजकुमारने युद्धमें जयपताका फहराई उसी प्रकार इसने मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार आत्म-कल्याण चाहने वाले साधुका भी कर्तव्य है कि वह अत्यन्त स्थिरता तथा सतोषके साथ आराधनाओंके आराधनमे अपना मन लगावे।

इस प्रकार राजकुमारकी कथा सम्पूर्ण हुई।

—:०:—

२. सोमशर्माकी कथा

पूर्वकालमे भरत क्षेत्रमें मथुरा नामकी नगरी थी। वह हिमालयके शिखरोके समान वडे वड़े जिनालयोसे मण्डित थी। उस नगरीमें सच्चरित्र, सदाचारी, सद्गुण, और शीलके महान समुद्र नन्दिमित्र नामके आचार्य निवास करते थे।

एक दिनकी वात है। एक सोमशर्मा नामका मानी ब्राह्मण वागड देशसे गोधनसे पूर्ण इस मथुरा नगरीमे आया। वह एक जैन-मन्दिरमे गया और वहा उसे आचार्य नन्दिमित्र दिखलाई दिये। आचार्य महाराजको देखते ही उसकी वुद्धि निर्मल होगई और उसने आचार्यसे दिगम्वरी दीक्षा

देनेकी प्रार्थना की। विशुद्ध ज्ञान और शरीरसे सम्पन्न आचार्यने भी उसकी अच्छी तरहसे परीक्षा की और उसकी इच्छा देख कर उसे जिन-दीक्षा दे दी। इसके पश्चात् आचार्य नन्दिमित्रने उसके लिए वर्णमाला लिख दी। परन्तु स्नेहपूर्वक पढाए जाने पर भी वह 'नमः सिद्धम्' का ठीक उच्चारण नही कर सका।

उससे आचार्य महाराजने कहा कि जब तुम्हे एक मातृकाक्षर का भी बोध नही हो रहा है तो तुम दुर्धर तप क्या कर सकोगे। इस प्रकार उन्होने इस साधुका सीधा तिरस्कार कर दिया।

जब उसने आचार्यकी यह कठोर वाणी सुनी तो वह अपने शरीरसे एक दम निस्पृह होगया और उसके मनमें आया कि इससे तो कही मर जाना अच्छा है। इसके बाद जब उसकी बुद्धि प्रकृतिस्थ हुई तो वह सोमशर्मा एक अन्य आचार्य के पास पहुचा और उनसे पूछने लगा कि भगवन् मुझे उत्कृष्ट मरणका उपाय बतलाइए।

आगमके ज्ञाता, और पवित्राशय उन आचार्यने सोमशर्माका अभिप्राय सुना और उसे उत्कृष्ट मरणका उपाय बतलाया। वे कहने लगे—देखो तुम चार प्रकारकी आराधनाओंका विशुद्धरीतिसे आराधन करो। चार प्रकारका आहार छोड दो। पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुह कर पर्यङ्कासन अथवा कायोत्सर्गसे स्थिर रह कर सावधानीके साथ चन्द्रप्रभ भगवानका नाम स्मरण करो।

साधुने बड़े ध्यानसे आचार्यकी बाणी सुनी। वह जिन मन्दिरमे पहुचा और तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान्को नमस्कार किया। इसके पश्चात् वह साधु मथुरा नगरीसे वनकी ओर विहार कर गया। वनमे जाकर वह एक वट वृक्षके नीचे

एक विशाल और उन्नत शिला-खण्ड पर पर्वतके समान निश्चल होकर कायोत्सर्ग करने लगा।

उसने पवित्र विचारोके साथ शरीरसे निस्पृह होकर जीवनपर्यन्तके लिए आहारका त्याग कर दिया और मनमे दृढताके साथ चन्द्रप्रभ भगवान्का स्मरण करने लगा। उसने विधिवत चार आराधनाओका आराधन किया और दो दिनमे ही उसकी मृत्यु होगई। मरकर वह महर्द्धिक देव हुआ।

यदि सोमशर्माने पहले खूब मनोयोग पूर्वक आराधनाओका आराधन किया तो क्या यह सर्वथा प्रमाणभूत नही है। अपितु इसके प्रमाणभूत होनेमे कोई सन्देह नही।

इस प्रकार पूर्वभावितयोगी सोमशर्माका कथानक समाप्त हुआ।

—— o:——

३. विष्णुदत्तकी कथा

जम्बद्वीपके भरत क्षेत्रमे विशाल जन-समृहसे घिरा हुआ अवन्ती नामका श्रेष्ठ देग था। इस देशमे उज्जयिनी नामकी एक नगरी थी जिसमें पुण्यात्मा जन निवास करते थे और जो जिन मन्दिर, कूप, प्रासाद और बाजारोसे सुशोभित थी। इस नगरीमे एक इस प्रकारका मुहल्ला था जहाँ दुखी, दरिद्री, प्रतिदिन भीख मागने वाले और दीनहृदय अन्धे रहते थे।

इन्ही अन्धोमें एक विष्णुदत्त नामका दरिद्र अन्धा रहता था। उसकी सोमिला नामकी पत्नी थी, जो बोलनेमे गधेकी तरह कर्कशा थी। विष्णुदत्तने अपने हृदय और मस्तकको अपने हाथो पत्थरोसे फोड लिया था। वह दातोमे तिनके दबाए रहता थाऔर बाजारमे मनोहर गीतोसे जनताको अनुरजित करता हुआ बडे कष्टके साथ अपने कुटुम्बका पालन-पोषण किया करता था।

एक दिन विष्णुदत्त का सिर दुखने लगा और वह शरीरसे

खिन्न होकर अपने घर जमीनपर पड रहा। विचारा दुखी ब्राह्मण अपनी कुटियामे पडा ही था कि इतनेमे उसकी पत्नी वहाँ आ पहुँची। उसने इस ब्राह्मणको एक लात मारी और कहने लगी—अरे ओ निर्दय, निर्लज्ज, अपना पेट भरने वाले! तुम मेरे बच्चेके लिए अब तक भोजन क्यो नही लाए? जाओ, कष्टकी चिन्ता न करके जल्दी ही भोजन लाओ। सज्जन बच्चोके पोषण करने मे कभी भी मानसिक खेद नही करते।

जब विष्णुदत्तने राक्षसी वाणीकी तरह अपनी पत्नीके कटु वचन सुने तो उसने अपनी कठोरहृदय पत्नीसे कहा—देखो, सुन्दर स्त्री, पुत्र, पुत्री, मणि, और सोना, धन-धान्य आदि सब कुछ तब तक अच्छा मालूम देता है, जब तक शरीर निरोग हो। इस समय मेरे सिरमे दर्द है और उसके कारण मेरा मन व्याकुल हो रहा है। इसलिए प्रिये! इस समय तो मै एक कदम नही चल सकता।

विष्णुदत्तकी बात सुन कर सोमिल्लाने उससे फिर कहा—चाहे तुम्हें कितना ही कष्ट हो, तुम्हे भीख मागने जरूर जाना पड़ेगा।

पत्नीकी बात सुनकर विष्णुदत्तने निश्चय किया कि इससे तो मर जाना कही अच्छा है। इस प्रकार निश्चय कर उसने अपने लडकेको साथमे ले लिया और उज्जयिनीसे चल पडा। बादमे वह लडकेको घर ही छोडता गया और स्वय बडा दुखी हो दौड़ता हुआ जा रहा था कि रास्तेमे उसका मस्तक वृक्षो से टकराया और वह जमीन पर आ गिरा।

मस्तकमें चोट आ जानेसे खून निकल आया और पृथ्वी रक्त-रजित हो गई। लेकिन जैसे ही उसे चेतना आई उसने धनसे भरे हुए घड़ेको देखा। रत्नोसे भरे हुए घडेको देख कर उसे बड़ा सतोष हुआ और उसे रोमाञ्च हो आया। वह

सोचने लगा कि क्या यह स्वप्न है या मुझे धोखा हुआ है ? किन्तु उसे विश्वास हो गया कि यह घटना सत्य है और अपनेको उठनेमे असमर्थ पाकर वह सोचने लगा कि अब क्या करूँ ? इतनेमे उसकी पत्नी उस स्थान पर आ गई। वह इसे खोजती हुई आ रही थी और जैसे ही विष्णुदत्तको यहा पडा हुआ पाया उसने उठानेके खयालसे उसमे एक लात मार दी। लेकिन ब्राह्मणने कहा—देखो, मुझे यह निधि मिली है और मुझे दिखने भी लगा है। अब तुम मुझे सँभाल कर जल्दी घर पहुँचा दो।

सोमिल्लाने जब यह देखा तो उसने उसे उठाया और उसके सिर पर निधि रखकर स्वय घरकी ओर चली गई। विष्णुदत्त भी सूझता बनकर अपने पुण्यका विचार करता हुआ निधिको लेकर शीघ्र ही अपने घर आ गया।

जब सोमिल्लाने अपने पतिको सिरपर धनका घड़ा रखे देखा तो उसका मुख खिल उठा और सामने आकर पतिके सिरका घडा लेकर प्रसन्नताके साथ उसे अपनी कुटियाके कोनेमे छिपा कर रख दिया। विष्णुदत्तको बैठनेके लिए आसन दिया, जलसे उसके चरण धोये, विधिवत् भोजन कराया और इस प्राप्तिका रहस्य पूछा।

विष्णुदत्तने, जिस प्रकार वह ठूठसे टकराया, दृष्टि लाभ हुआ और निधिकी प्राप्ति हुई, सब कुछ सोमिल्लासे कह सुनाया।

विष्णुदत्तकी बात सुनकर सोमिल्लाको बडी प्रसन्नता हुई। वह विष्णुदत्तके साथ बडी मीठी मीठी बाते करती हुई सुख सागरमे मग्न रहने लगी।

एक बार इन दोनोने समस्त अन्धोको सपरिवार आमन्त्रित

किया और इच्छानुसार खीर आदिके मीठे भोजन कराये, जिससे इन अन्धोको बडा सन्तोष हुआ।

इसके पश्चात् जब मुहल्लेकी अन्य स्त्रियोने उन दोनों दम्पतियोंको वस्त्राभरणसे भूषित, फूल लगाये और पान चबाये हुए, तथा गाय भैंसोसे सम्पन्न देखा तो उनके मनमे बडा विस्मय हुआ। उनका मन निरन्तर इन दोनोकी पुण्यकथा-ओंमे आसक्त रहने लगा।

एक दिन धनकी तृष्णासे आतुर होकर ये स्त्रिया अपने बच्चोंके साथ सोमिल्लाके यहाँ आईं जिनकी बोलीसे आकाश और भूतल परिपूर्ण हो उठा। सोमिल्लाने उन्हे आसन देकर बिठाया और उनका उचित आदर सत्कार किया।

फिर सबकी सब स्त्रिया सभ्रमके साथ मीठी वाणीमे एक साथ उससे कहने लगी-सखि! बताओ तो तुम्हारे पतिने यह उत्तम धन कहाँसे पाया और इन्हे दृष्टि लाभ भी कैसे हुआ? सखि! यह तुम ठीक ठीक बताओ और जल्दी बताओ।

उनकी बात सुनकर सोमिल्ला मुस्करा दी और मनमे बड़ी प्रसन्न हुई। उस कौतुकपूर्ण प्रत्यक्ष सत्य को वह इस प्रकार सुनाने लगी—

मैने पहले अपने पतिका खूब कडे शब्दोमे तिरस्कार किया। फिर यद्यपि वह चल—फिर नही सकते थे लेकिन मेरी बात सुनकर घरसे निकल पडे। वे दौडते हुए जा रहे थे कि इतनेमे वृक्षके ठूँठसे उनका सिर टकरा गया। खून निकल आया। खून निकलनेके साथ ही उन्हे दृष्टि और धनका लाभ हो गया।

सोमिल्लाकी बात सुनकर सभी स्त्रिया मनमे बहुत खुशी हुईं और वे सब यह सोचकर कि अब तो धन मिल ही गया—

अपन अपने घर चली गईं। सभी स्त्रियाँ अपने अपने पतिके पास पहुँची और उन्हे विष्णुदत्तका वृतान्त सुनाने लगी।

अपनी अपनी पत्नियोकी बात सुनकर विचारे अन्धोंके मनको बडा आघात लगा। वे धन और दृष्टिके लालचमे जल्दी जल्दी दौडने लगे। इस तरह दुखी होकर कुछ कुओंमे गिरे, कुछ तालावमे गिरे, कुछ नदियोमे गिरे, कुछ वापिकाओमे गिरे और कुछ छोटी तलैयोंमे। वृक्ष और पत्थरोंमे टकरानेके कारण उनके समस्त अग-भग हो गए और उन सबने रौद्र और आर्तध्यानके साथ अशुभ परिणामोसे जीवन-लीला ममाप्त की। तृष्णावश स्थानभ्रष्ट होकर लडखड़ाते हुए कुछ दुष्ट नरकगतिमे जा गिरे और कोई तिर्यञ्च गतिमे।

इस प्रकार यदि विष्णुदत्तने धन और दृष्टि प्राप्त की तो दूसरोंने मरकर दुख-परम्परा। इसलिए ससारमे नि.सन्देह पुण्यात्माओ और पापात्माओका समान प्रयोजन नही हो सकता। पुण्यात्मा अपनी प्रवृत्तिसे सुख प्राप्त करते है और पापात्मा दुख।

इस प्रकार विष्णुदत्तकी कथा सम्पूर्ण हुई।

—:o:—

४. सोमदत्त और विद्युच्चोरकी कथा

मगध देशमे राजगृह नामक नगर था। वह धन-धान्यसे भरा हुआ था। और पुरवासियोसे आकीर्ण था। उस नगरमें प्रजापाल नामक राजा रहते थे। उन्होंने अपने समस्त शत्रु नष्ट कर दिये थे और अपनी कीर्तिसे संपूर्ण गगन और पृथ्वी-मण्डलको धवल कर दिया था। वे प्रजाके पालन करनेमे समर्थ थे और गुणोके समुद्र थे। इनकी पट्टरानीका नाम कनका था जो सुवर्णके समान उज्ज्वल थी।

उसी नगरमे जिनदास नामके एक सेठ रहते थे। वे

बड़े धनी थे। जिन भग वान्‌की पूजा-विधानके जानकार थे और जिनधर्म–प्रेमी भी। इनकी पत्नीका नाम जिनदत्ता था, जो जिन भक्ति-परायण, रूप, शील और कुलवती तथा प्रियवादिनी थी। एक समय आरण स्वर्गसे आए हुए देवने अपनी सिद्ध ? की हुई विद्या जिनदासको आदरके साथ दे दी। सिद्धकी गई यह विद्या, अन्य शक्तिहीन वाल–वृद्ध और युवा पुरुषोके लिए आश्चर्यजनक सिद्धि देती थी। इस आकाश गामी मत्रसे जिनदास कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोके जिनविम्बोकी वन्दना करके फिर अपने नगरमे वापिस आ जाते थे।

एक वार गॉवके, वस्त्रोंसे विभूषित, धर्मपुत्र, सोमिल्लाके पति सोमदत्तने जिनदाससे कौतुकपूर्वक पूछा–तात, मुझे यह वतलाइए कि आप अष्टमी और चतुर्दशीके दिन कहा जाते है ? यह वात उसने वडे स्नेह और विनीत भावसे पूछी। जिनदासने आश्चर्यके साथ पूछे गए उसके प्रश्नको सुनकर कहा कि मुझे मेरे मित्रने एक मन्त्र वतलाया है, जिसके प्रयोगसे मै आकाशमे होकर जितने कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय है, और कल्पवृक्षोसे सुशोभित मेरुपर जितने मणि, और स्वर्णमय चैत्यालय है उनकी बन्दना करने जाता हूँ और फिर शीघ्र ही अपने नगरमे वापिस आ जाता हूँ।

जिनदासके वचन सुनकर सोमदत्तके हृदयको वडा आनन्द हुआ और उसका मन विस्मयसे भर गया। उसने फिर जिनदाससे पूछा-तात ! मुझे भी यह आकाशगामी विद्या वतलादो, जिससे मै भी उन जिनालयोमे जा सकूँ और कृत्रिमा-कृत्रिम जिनविम्बोकी तथा मुनियोंकी भक्ति भावसे बन्दना करके आकाश-मार्गसे आ सकूँ।

सोमदत्तकी बात सुनकर जिनदासने कहा, पुत्र ! पाठ से सिद्धिको देनेवाली यह विद्या मुझे एक देवने बतलाई है।

उसे अन्य हीन-शक्तिवाले प्राणी सिद्ध नही कर सकते। इसलिए तुम यही रहकर उन जिन–बिम्बोंकी स्तुति किया करो।

सोमदत्त चतुर था। इसलिए उसने फिरसे जिनदाससे पूछा–आप मुझे यह वतलाइए कि मै इस विद्याको क्यो सिद्ध नही कर सकता? जिनदासने धर्म-पुत्रकी यह बात सुनकर और उसे विनीत सदाचारी तथा जिन भक्तिमे तत्पर देखकर उससे कहा कि पहले छह दिन तक तुम इन्द्रियोका निग्रह करो, पवित्र रहो और फिर कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीकी रातमे निर्भय होकर स्मशानमे जाओ। वहाँ तुम्हे एक इस प्रकार का वटवृक्ष दिखेगा जो पर्वतके शिखरके समान उत्तुग होगा और जिसकी शाखाएँ समस्त दिशाओमे फैली होगी। उस वृक्षकी ऊपरकी शाखामे एक सौ आठ लड़ीका एक सीका वधा होगा। सफलताका रहस्य उसीमे निहित है। उस सीकेके नीचे वरछे-भाले और छुरी आदि हथियारोको खूव तेज कर और उनकी धारोको ऊपरकी ओर रखकर गाढ देना। जब विद्या पढ चुको अर्थात् तुम्हारा पाठ पुरा हो चुके तव गन्ध, अक्षत, दीप, धूप और फले आदिसे हवन करना। फिर चमकती हुई और तेजधारवाली तलवार लेकर 'नम सिद्धेभ्य' कह कर सीकेपर बैठ जाना। पश्चात् अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओंको नमस्कार करते हुए सीकेकी एक लडी काटना। इस क्रमसे समस्त लडियोको काट देनेपर तुम्हे आकाशगामी विद्या सिद्ध हो जायगी। इस प्रकार पवित्रात्मा जिनदासने बुद्धिमान सोमदत्तके लिए विद्याका उपदेश दिया और फिर वह चुप हो गया। धर्मपुत्रने भी भलीभाति वतलाई गई जिनदासकी विधिको स्वस्थ चित्तसे सुना और उसकी वडी भारी विनयकी।

दूसरे दिन सोमदत्तने जिनदासके उपदेशानुसार बडी प्रसन्नतासे उस पूर्वनिर्दिष्ट वट वृक्षपर सीका बाधा। आयुधोंको गाढकर उनका मुख ऊपरकी ओर कर दिया। वह भगवान्की बदना कर तथा दीप-धूप-फलादि चढ़ाकर सीकेपर बैठ गया। लेकिन जैसे ही उसने नीचे आयुध-खचित जमीनकी ओर देखा तो वह डर गया और सोचने लगा कि यदि मैं तलवारसे इस सीकेको काटूँगा तो नियमसे इन हथयारोंके ऊपर गिरूगा और इनके ऊपर गिरनेसे मेरी मृत्यु तो निश्चित है पर, पता नही, विद्या सिद्ध होगी कि नही ? इस प्रकार सोच भय-भीत होकर वह सीकेसे उतर पडा और व्याकुलमन होकर फिर उसपर चढने लगा।

इस उतरने और चढनेकी प्रक्रियाको कुछ दूर ठहरा हुआ एक सौम्यमूर्ति विद्युच्चोर देख रहा था। वह सोम-दत्तके पास आया और उससे बोला--अरे ब्राह्मण, तुम इस वट वृक्षपर क्यो इस प्रकार उतर-चढ रहे हो ? मुझे तुम्हारी यह स्थिति देखकर बडा आश्चर्य हो रहा है। तुम मुझे समस्त वृत्तान्त सुनाओ।

विद्युच्चोरकी बात सुनकर सोमदत्तने कहा--मै आकाश-गामिनी विद्या सिद्ध कर रहा हुँ। मुझे अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुके नाम की माला जप कर तलवारसे सीकेकी एक एक लड़ी काटनी है। जब इस क्रमके अनुसार इसकी समस्त लडिया काट दी जायँगी तो मै पृथ्वीपर नही गिरूँगा और मुझे आकाशगामी विद्या सिद्ध हो जायगी। लेकिन मुझे इसपर सन्देह हो गया है और मै अकेला इस विजन वनमें यह काम कर रहा हूँ। उसने सोचा, वास्तवमे जो सशयालु है वे कभी सफलता प्राप्त नही कर सकते।

सोमदत्तकी यह कातर वाणी सुनकर विद्युच्चोरकी यह इच्छी हुई कि मै इस विद्याको प्राप्त करूँ। उसने सोमदत्तसे

कहा–अरे ब्राह्मण, यह तो बतलाओ, यह सच्चिदानन्ददायिनी विद्या किसने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करके तुम्हें बतलाई है ? तुम मुझे जल्दी बतलाओ।

विद्युच्चोरकी बात सुनकर सोमदत्तने कहा कि यह गगन-गामिनी विद्या मुझे जिनदासने बतलाई है। विद्युच्चोरने भयभीत चित्त सोमदत्तकी बात सुनी और तनिक गभीर होकर उसने अपने मनमे सोचा–जो दयालु और जिन शासनका प्रेमी जिनदास एक कीडीको भी दुःख पहुँचानेकी बात नही सोच सकता वह भला कभी अपने हाथसे पालित-पोषित जनप्रिय, पञ्चेन्द्रिय धर्मपुत्रकी हत्या कर सकता है ? कभी नही। लेकिन इसका शरीर सशयरूपी ग्रहसे पकड़े जानेके कारण कप रहा है और इसलिए यह अभागा मूढ जिनदासकी बतलाई गई विधि नही कर रहा है। इस प्रकार सोचते-सोचते उसे आत्म-बोध हुआ और वह बतलाई गई विधि सम्पन्न करके सीकेपर चढ गया। सोमदत्तका प्रयोजन सिद्ध नही हो सका और वह खिन्न मुख होकर रक्षा-पुरुषोके साथ अपने घर आ गया।

विद्युच्चोरने सिद्धोकी स्तुति की और पच परमेष्ठियोको नमस्कार करके एक साथ तलवारसे सीकेकी सारी लडिया काट दी। सीकेकी लडिया काटते ही उसे आकाशगामी विद्या सिद्ध हो गई और उसका शरीर आकाशमे स्थित हो गया। तथा थोडे ही समयमे वह आकाश मार्गसे मेरुपर जा पहुँचा। उसने नन्दन वन, सौमनस्य वन, भद्रशाल वन और पाण्डुक वनके जिन चैत्यालयोकी वन्दना की। सिद्धकूटके जिन-विम्बोकी अर्चा करके उसे वड़ी प्रसन्नता हुई और वहाँ उसने मुनियो के निकट बैठे हुए जिनदासको देखा। उसने जिनदासकी तीन प्रदक्षिणाकी और भक्ति भावसे उसे नमस्कार कर कहने लगा

आपके प्रसादसे मुझे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो गई है ।
जिनदासने जब विद्युच्चोरका विकसित मुख-कमल देखा
तो उसका मुह उतर गया और उसके मनमे बडा खेद हुआ ।
उसने सोचा यह सुवर्ण और मणिमय जिनविम्ब है और यह
चोर धन-लम्पट है । यह नियमसे इन विम्बोको चुरा ले
जायगा । बहुत देर सोचनेके बाद उसने सामने बैठे हुए
विद्युच्चोरसे पूछा कि पहले तुम यह बतलाओ, यह आकाश-
गामिनी तुम्हे किसने सिखलाई । खिन्नमुख जिनदासकी बात
सुनकर विशुद्ध हृदय विद्युच्चोर ने अपने पाणि-युगलको मस्तक
पर रखकर कहा—यह विद्या अस्थिरचित्त सोमदत्तने मुझे
वतलाई है । आप अधिक विकल्प क्यो करते है ? मुनि महा-
राजके पास चलिए । उसकी बात सुनकर जिनदासके मन
को सतोष हुआ और वह उसे मुनिराजके पास ले जाकर
कहने लगा—भगवन् ? इस भव्योत्तम धर्मात्माके लिए आप
कर्मोंका नाश करनेवाली पवित्र दिगम्बरी दीक्षा दीजिए ।

जिनदासकी वाणी सुनकर धर्महृदय और मस्तकपर हाथ
रखे हुए विद्युच्चोरसे मुनिराज बोले—तुम धन्य हो,
कृतकृत्य हो और बुद्धिमान् हो जो इस नई जवानीमे तुम्हारी
इस प्रकारकी तपकी ओर बुद्धि हुई ।

ससार समुद्रसे पार करने वाले मुनिराजके वचन सुनकर
विद्युच्चोरने पृथ्वीपर अपने घुटने टेक दिए और योगिराजसे
वह प्रार्थना करने लगा कि भगवन्, मुझे वह दीक्षा दीजिए जो
ससार रूपी कुवेमे गिरने वालोके लिए हस्तावलम्बन स्वरूप
है और जो कर्मोको घात करने वाली है ।

मुनिराजने इस भव्यकी प्रार्थना सुनकर और उसकी आसन्न
मृत्यु समझकर कर्मोंका नाश करने वाली दिगम्बरी दीक्षा
उसे दे दी । विद्युच्चोरने बहुत दिन तक कर्मघातक तपस्याकी

और अन्तमे संन्यासमरणके साथ जीवन–लीला समाप्तकर स्वर्गमे बडा भारी देव हुआ।

सशयालु ब्राह्मणको विद्या सिद्ध नही हो सकी और विद्युच्चोरने नि शङ्कित होकर उसे बहुत शीघ्र सिद्ध कर लिया।

इस प्रकार शकित सोमदत्त और निशंकित
विद्युच्चोरकी कथा समाप्त हुई।

——o——

५. विषरथ और यशोरथकी कथा

जम्बूद्वीपके दक्षिण भरत क्षेत्रमे अवन्ती नामका देश था। यह देश धन, धान्य और स्त्रियोके लिये बहुत प्रसिद्ध था। इस देशमे रूप और सौभाग्यसे सम्पन्न तथा रमणियोके मनको रमण करने वाले कुलीन पुरुपोसे सुन्दर उज्जयिनी नामकी भव्य नगरी थी।

इस नगरीमे विषधर नामका राजा रहता था। विषधरने अपने गुणोसे भूतलको अनुरजित कर दिया था और अपनी हाथकी तल्वारसे शत्रुओका विनाश कर दिया था। इस राजा की कनक माला नामकी भार्या थी, जिसके नेत्र कमलके समान थे और जिसकी कान्ति तपाए गए सोनेके समान सुन्दर थी।

इन दोनोके दो पुत्र उत्पन्न हुए। वे इतने सुन्दर थे कि मनुष्य उन्हे देखते ही आनन्दित हो उठते थे। एकका नाम यशोरथ था, जो यशकी राशि था और दूसरेका नाम था विषरथ। वे दोनो वनमे और नदियोके सुन्दर रेतीले प्रदेशोमे फूल आदिसे खूब खेलते रहते थे।

एक बार खेलते खेलते वे दोनो अपने पिताकी गायोंके झुण्डके साथ चले गए। जब चरवाहेने उन्हे देखा तो वह उन दोनोको बडे हर्षके साथ अपने घर ले आया। उसने पहिचान लिया कि ये हमारे मालिकके सुपुत्र है। जब उन्हे भूख

मालूम हुई तो उसने उन्हे खीर आदि खिलाई। चरवाहेके घरसे चलकर ये दोनों अपने पिताके घर पहुचे। छोटा भाई भोजन-लम्पट था। इसलिए घर आते आते उसने फिरसे भोजन कर लिया। अति भोजनसे उसे विसूचिका रोग हो गया और विषरथ मर गया। अपने कनिष्ठ लड़केकी मृत्युसे विषधर राजाने सोचा-जीवन जल बुद्बुदके समान है। मनुष्योका प्रेम स्वप्नके समान है और सपदाएँ असार है, पाप की कारण है तथा तरगोकी गतिके समान चञ्चल है। रमणियोके साथकी प्रीति सन्ध्याकी लालिमाके समान है और मनुष्योंका यौवन केलेके मध्यके समान नि सार है।

इस प्रकार चिन्ता करते करते उसे आत्म-भान हुआ और उसने अपनी राजगद्दीपर ज्येष्ठ पुत्र यशोरथको बिठाकर जैन दीक्षा ग्रहण कर ली।

विषरथने मर्यादासे अधिक भोजन किया और इसके फल स्वरूप उसे ससारके घोर दुःख भोगने पडे। दूसरा भाई यशोरथ अतिभोजी नही था। इसलिए वह मरा भी नही और पितासे राज्य प्राप्त करके उसने खूब सुख भोगे।

इस प्रकार साकाक्ष विषरथ और निकाक्ष
यशोरथकी कथा समाप्त हुई।

---:o---

६. जय और विजयकी कथा

भरत क्षेत्रमे उज्जयिनी नामकी नगरी थी। उसमें गगन चन्द्र नामके राजा रहते थे। उनकी प्रियाका नाम गगनश्री था। गगन चन्द्र राजाका गगनादित्य नामका एक मित्र था। गगनादित्य रावणके समान बुद्धिमान् था और सिहल द्वीपका शासक था। गगनादित्यकी गगन सुन्दरी नामकी पत्नी थी जिसका मुखकमल शरत्कालीन चन्द्रमाके समान था और नेत्र भी कमलके समान सुन्दर थे।

इन दोनोके दो पुत्र उत्पन्न हुए । पहलेका नाम जय था, जो विजयी और वुद्धिमान् था । छोटेका नाम विजय था, जो शूरवीर था और जिसने विजयसे भूतलको आकर्षित कर लिया था ।

कुछ दिनोके बाद सिंहलद्वीपका बलवान् और शूरवीर नायक गगनादित्य स्वर्गवासी होगया । और जब उज्जयिनी-पति गंगनचन्द्रको अपने मित्र गगनादित्यके स्वर्गवासी हो जानेका समाचार मिला तो उसे बडा शोक हुआ । उसने कुछ विश्वस्त पुरुषोके साथ अपने मित्रके दोनो लडके अपने यहा बुलवा लिये । गगनचन्द्रने उन्हे बडे मधुर ढंगसे समझाया और कुछ दिनोके बाद उनका शोक दूर हो गया ।

एक दिन गगनचन्द्र राजाने मलयपर्वतीय फूल, ताम्बूल कपूर और कुकुमसे तथा वस्त्राभरणोसे गगनादित्यके उन दोनो पुत्रोका खूब सत्कार किया । फिर उसने दोनोके सामने रसोइएको बुलाया और कहा अभी हाल विषान्न-भोजन तैयार करो । रसोइएने अनेक प्रकारका विषान्न-भोजन तैयार किया और इन दोनोको परोस दिया । दोनो भाइयोने कुछ हल्की शकाके साथ उसे खा भी लिया । जब भोजन करके मनोहर शय्यापर दोनो भाई लेट गए तो जय होशमे आकर विजयसे बोला—आज मेरी जिह्वा कमलदण्डके समान कठोर हो गई है और शरीर वायुसे आहत वृक्षके पत्तेकी तरह कप रहा है ।

जयकी बात सुनकर विजयने कहा—भाई, मेरी जिह्वा क्यो कठोर नही हुई और शरीर भी क्यो नही कप रहा है ?

विजयकी बात सुनकर जयने फिर कहा—भाई, क्या तुमने सभाके मध्यमें राजाका वह वाक्य नही सुना था

कि सूपकार, तुम जल्दी विपान्न भोजन तैयार करके लाओ ? विषान्न उस भोजनको ही तो कहते है जिसमें विष मिला रहता है ! हम लोगोने विप-मिश्रित विपान्न खा लिया। इसीलिए हमारी जिह्वा जड हो गई है और शरीर कप रहा है।

जब बुद्धिमान् विजयने जयकी मूर्खतापूर्ण बात सुनी तो उसने निर्भय होकर उससे कहा—यदि तुम्हारी जिह्वा जड हो गई है और शरीर कप रहा है तो मैंने भी तो वही भोजन किया है। फिर मेरी जिह्वा क्यो जड़ नही हुई और क्यो शरीरमे कप नही हो रहा है ? अरे मूर्ख, तुमने विषान्न शब्दका गलत अर्थ समझ लिया है। जो अत्यन्त विशिष्ट, अनेक प्रकारके रसोसे युक्त सरस आहार है उसे बुद्धिमानोने विपान्न कहा है। यह विषान्न प्राणियोको कान्ति, पुष्टि, बल और वीर्य प्रदान करता है। इसी प्रकार-का भोजन आज हम लोगोने नि शङ्कित होकर किया ह। वही कहा है—

'त्वच्छासनरसज्ञाना विदुषा मोक्षकाक्षिणाम्।
विषान्नमिवभोक्तृणा श्रुतिरन्या न रोचते॥'

अर्थात् 'जिस प्रकार विषान्न भोजियोको अन्य किसी भी प्रकारके भोजनमे रस नही आता, उसी प्रकार विद्वान् मोक्षाभिलाषी तुम्हारे शासनके रसास्वाद करने वालोंको भी अन्य कोई श्रुति नही रुचती।'

इसलिए तुम सशय उत्पन्न करनेवाली घृणा छोडकर मनमे धीरज धरो और स्वस्थ चित्त बनो। इस प्रकार विजयने जयको बार बार समझाया। लेकिन उसकी आत्मामे विषकी आशका जो घर कर गई थी। इसलिए वह मर गया और मरकर घोर समार-सागरमे अनेक प्रकारके दु:ख उठाए, जहां क्रोधरूपी नीर भरा हुआ है, मानरूपी भयकर

मगर है, मायारूपी तरग उठा करती है, लोभरूपी तट फैला हुआ है और अनेक योनिरूपी वायु जहा बहा करती है।

लेकिन विजयके मनमे किसी प्रकारकी विचिकित्सा पैदा नही हुई थी। इसलिए वह जीवित रहा और राजा गगन-चन्द्रसे समानित होकर अपने द्वीपमे चला गया।

अपने द्वीपमे जाकर विजयने चिरकालतक राज्य किया। शत्रुओको पराजित किया और समस्त परिग्रह छोडकर जैन तप करने लगा।

उस गंभीरबुद्धि छोटे भाईने अन्तर बाहरसे विचिकित्सा छोड़ दी और दीर्घकालतक तप करनेके पश्चात् वह मोक्ष चला गया।

इस प्रकार विचिकित्सक जय और निर्विचिकित्सक विजयका कथानक समाप्त हुआ।

—— ०:——

७ रेवतीकी कथा

पाण्ड्य महादेशमे दक्षिण मथुरा नामकी नगरी थी। वह धन-धान्यसे सम्पन्न थी और अनक जिनायतनोसे अलङ्कृत थी। उस नगरीमे पाण्डु नामका राजा रहता था। यह राजा सदैव प्रजाकी रक्षा करनेमे उद्यत रहता था और अपने सद्गुणोसे इसने समस्त भूलोकको अनुरञ्जित कर लिया था। राजा पाण्डुकी सुमति नामकी स्त्री थी। सुमति शीलवती थी, रूपवती थी, मधुरभाषिणी थी, बुद्धिमती थी और उसकी कीर्ति समस्त दिशाओमे फैल चुकी थी।

इसी मथुरा नगरीमे मुनिगुप्त नामके आचार्य निवास करते थे। यह समस्त शास्त्रोमे पारगत थे, दिव्यज्ञानी थे, महान् तपस्वी थे और गुणोके समुद्र थे।

एक दिन मनोवेग नामका एक विद्याधरकुमार बडे वेगसे दक्षिण मथुरा नगरीमे आया और आते ही वह जैन-मन्दिरमे चला गया। वहा पहुचकर उसने तीन प्रदक्षिणाएं दी और सव कष्टोको दूर करनेवाले श्रीजिन भगवान्‌को नमस्कार किया। इसने आचार्य मुनिगुप्तकी वड़ी विनय की और अन्य मुनियोको भी नमस्कार किया और वही वैठकर घडी भरके लिए धर्म-कथा सुनने लगा। इसके पश्चात् मनोवेगने वडी भक्तिके साथ आचार्य मुनिगुप्तसे प्रार्थना की–भगवन् ! मैं श्रावस्ती नगरीमे जिन-पूजा करने जाना चाहता हूँ। आप मुझे उस पवित्र नगरीमे जानेकी आज्ञा दीजिए।

मनोवेगकी प्रार्थना सुनकर आचार्यने उससे इस प्रकारकी मीठी वाणीसे कहा जैसे वह वर्षाकी आशका करनेवाले मोरोको नचा रहे है। उन्होने कहा–हे श्रावक, यदि तुम मनोरम श्रावस्ती नगरीके देव-वृन्दके द्वारा नमस्करणीय प्रशस्त जिन मन्दिरोंकी वन्दनाके लिए जा रहे हो तो धर्मरत रेवती श्राविकासे मेरी आशिस् कह देना।

मुनिराजकी वाणी सुनकर मनोवेगके मनको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उसका कुछ भी आशय नही समझ सका। वह अपने मनमे सोचने लगा–आचार्यने रेवती श्राविकाके लिए तो आशीष् भेजी है। लेकिन वहां जो अन्य मुनि और श्रावक है उनके लिए ये न वन्दना कह रहे है और न आशीष्। वह बहुत देर तक इस बातको विचारता रहा और अन्तमे निर्णय करनेके हेतुसे उसने फिर आचार्य महाराजसे प्रार्थना की–भगवन्, मै श्रावस्ती नगरी जा रहा हूँ। मनोवेगकी समझ भ्रान्तिपूर्ण थी और उसके मनमे कुटिलता आ गई थी। लेकिन इसकी प्रार्थना सुनकर आचार्य महाराजने फिर कहा–यदि तुम श्रावस्तीमें जिनवन्दनके

लिए जा रहे हो तो रेवती नामकी श्राविकासे मेरा आशीर्वाद कहना ।

मनोवेगको पुन आश्चर्य हुआ । वह कहने लगा, भगवन् ! यह रेवती श्राविका कौन है और इसमे क्या गुण है ? आप मुझे यह बतलाइए । मैने आप से तीन बार प्रार्थना की, लेकिन आपने तीनो बार श्राविकाके लिए ही आशिर्वाद दिया । वहा जो अन्य श्रावक है, उनके लिए आपने कुछ नही कहा । तथा वही पर एक भव्यसेन नामके आचार्य रहते है । उन्हे भी आपने कुछ नही भेजा । यह आचार्य भी महा तपस्वी, एकादशाङ्गधारी, चतुर्विध गणके नायक और जीवादि तत्त्वज्ञानमे उत्पन्न होनेवाले सशयको नष्ट करने वाले है ।

आचार्य महाराजने मनोवेग विद्याधरकी बात सुनी और अपनी गभीर वाणीके नादसे समस्त भूतलको शब्दायमान् करते हुए कहने लगे—देखो, जिस भव्यसेन आचार्यकी तुमने चर्चा की है उसकी बुद्धि भ्रष्ट होगई है और वह पृथिवीकायिक जीवोपर विश्वास नही करता है । पदार्थोपर यथार्थ श्रद्धा न होनेका नाम ही मिथ्यात्व है और मिथ्यात्वी जीव तो ससार-समुद्रमे ही भ्रमता रहता है । हे विद्याधर ! इसी कारणसे मैने इसके लिए बन्दना, प्रतिवन्दना और अपना कुशल वृत्त नही भेजा है । तुम्हारा जो दूसरा प्रश्न है कि मैने रेवती श्राविकाको ही क्यो आशीर्वाद दिया, अन्यके लिए क्यो नही ? इसका भी कारण है । सुनो !

रेवती सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न है, जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तका प्रतिपालन करती है, कुतीर्थ कुलिंगी और पाखण्डियोके चरितसे उसका मन सदा विरक्त रहता है । उसने नी सग जिनदेवको ही मोक्षमार्ग समझा है । उसका

धर्म अहिंसा है। उसका तप इन्द्रियोंका निग्रह है और उसने उन्हे अपना गुरु बनाया है, जो सम्यक् चारित्री है, धीर है, जिनका शरीर क्षमासे भूषित है और जो ब्रह्मचारी है। यही कारण है कि मैने रेवतीके लिए आशीर्वाद कहा है अन्य मिथ्यात्वियोके लिए नही।

उस विद्याधरने परिणाममे सुखद आचार्य महाराजकी बाणी सुनी और वह भौहे तान करके मनमे सोचने लगा— देखो, मुनियोके भी कितनी तीव्र कषाय होती है कि सम्यग्-दर्शनसे पवित्र श्राविकाको तो इन्होने उत्तम बतला दिया और जो समस्त आगमोके अभ्यासी है, महान् योगी आचार्य है उन्हे मिथ्यादृष्टि बतला दिया। उसने सोचा, अब मुझे इस सम्बन्धमे अधिक विकल्प करनेकी जरूरत नही। अच्छा यही है किमै शीघ्रही उस नगरीमे जाकर इस बातकी परीक्षा करू।

मनोवेगने जिनेन्द्र और मुनीन्द्रको नमस्कार किया और क्रोधके आवेशमे वहासे तुरन्त चलकर श्रावस्ती नगरी आ पहुँचा।

श्रावस्तीमे पहुँचकर उसने पूर्व दिशामे हस और कमण्डलसहित चतुर्मुख ब्रह्माका मायामय रूप बनाया। दक्षिण दिशामे शख, चक्र, गदा और गरुडके आसनसे सहित विष्णुका रूप बनाया। पश्चिम दिशामे कपाल और बैलसे युक्त तथा सिरपर सर्पसहित मायामय रुद्रका रूप बनाया और अपनी मायासे उत्तर दिशामे योगाभ्यासमे तन्मय, शान्त और सुदर बुद्धका रूप बनाया।

रुद्र आदि देव-समूहको एकत्रित सुनकर सभी महेश्वरी भाई प्रसन्न हुए और भक्तिभावसे उनके दर्शन करने पहुचे। नगरीके समस्त श्रावक और श्राविकाए दर्शन करने पहुची, लेकिन वहा रेवती श्राविका दिखलाई नही दी।

फिर मनोवेगने मायासे उसी नगरीमे आठ प्रातिहार्योसे युक्त पच्चीसवे तीर्थंकरको उपस्थित कर दिया। पच्चीसवे तीर्थंकर सुनकर भव्यसेन नामके आचार्य अपने मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका गणके साथ उनके दर्शन करने आए। स्त्रियोने रेवतीके पास जाकर कहा–सखि, अपनी नगरीमे पच्चीसवे तीर्थंकर आए है। यतिसघ और आर्यिकासघ तथा समस्त श्रावक श्राविकाए भक्तिभावसे पुष्प आदि लेकर बन्दनाके लिए निकल गई है। हमलोग भी अक्षत, पुष्प, चरु, दीप, धूप और फल लेकर उनकी बन्दना करने चले।

रेवतीने जब स्त्रियोको भक्तिसे सतुष्ट और उनका मुख-कमल प्रसन्न देखा तो वह उनसे कहने लगी–भई, हमे तो कुछ घरका काम करना है। इसलिए हमारा चलना सभव नही है। रेवतीकी बात सुनकर उन स्नेही सखियोने कहा–यही एक नगरी धन्य है जहा कलिकालमे भी ब्रह्मा, आदिक सभी देवता विराजमान है। लेकिन उन्हे तुम मानती नही, इसलिए तुम्हारा वहा न जाना तो ठीक है। पर तुम तो जिनेन्द्रके अवतारमे भी पाप समझ रही हो। बोलो चलती हो कि नही ? इस प्रकार कहकर वे चलनेको उद्यत होगई। लेकिन रेवतीने उन्हे रोका और कहने लगी–देखो, आचार्योने भूत, वर्तमान और भविष्यतके २४चौबीस तीर्थंकर ही बतलाए है। पच्चीसवे तीर्थंकर न है, न हुए है और न होगे। मुझे मालूम होगया है यह कोई मायाचारी है। आप लोग चाहे तो जिनालय जा सकती है।

उन स्त्रियोको रेवतीकी बात सुनकर बडा आश्चर्य हुआ। परन्तु वे रेवतीके मकानसे निकलकर अपने इच्छित स्थान पर गई। भव्यसेन भी सघसहित पच्चीसवे तीर्थंकरकी बन्दना करनेके लिए गये और सिद्ध-भक्तिपूर्वक बन्दना करके अपने स्थान पर वापिस आगये।

मनोवेगने अपनी अवलोकन विद्यासे समस्त समुदायको देखा लेकिन फिर भी उसमे रेवती दिखलाई न दी ।

अवकी वार मनोवेगने जिनरूप छोड कर क्षुल्लकका वेप धारण किया और झूठीवेदनासे पीडित होकर एक दुकानमे गिर रहा । वह वाहरसे वमन करता जाता जोरसे चिल्लाता जाता और रेवती श्राविकाके नामको पुकारता जाता था ।

एक स्त्री रेवतीके घर गई और कहने लगी—सखि! रास्ते मे एक क्षुल्लक पडा हुआ है और तुम्हारा नाम ले रहा है । रेवतीने उसकी वात सुनकर कहा—बताओ कहाँ है । उस स्त्री ने कहा—वह एक दुकानके अदर पडा हुआ है ।

रेवती उसकी वात सुनकर उस क्षुल्लकके पास गई और उसे अपने हाथसे उठा कर घर ले आई ।

जव क्षुल्लक महाराज उसके घर आगए तो उन्होंने रेवतीसे कहा—मुझे भूख लग रही है, भोजन जल्दी वनाओ । क्षुल्लक महाराजकी वात सुनकर सुखसे बैठे हुए और क्षुधा-पीडित महाराज के लिए वह एक पात्रमे सहर्ष भोजन ले आई । जैसे ही रेवती इनके लिए मनोरम मोदक लाई, इन्होने मायाके प्रपञ्चसे सबको खा डाला । जैसे ही रेवतीने इन्हे सरस घी दिया, इन्होने मायाके योगसे उसे भी पी डाला । जैसे ही इसने सरस घीके पुवे दिए । इन्होने उन्हे गुडके विना खा डाला । जैसे ही उसने अनेक प्रकारके व्यञ्जन परोसे क्षुल्लक महाराज एक ग्रासमें ही उन्हे साफ कर गए । जैसे ही रेवतीने इन्हे खूव गाढा और सुन्दर दही दिया, मायावी महाराज भोजनके विना सूखा ही उसे खा गए । जैसे ही रवतीने माड़के लिए शक्कर सहित दूध रक्खा यह माण्ड के विना ही दूध गटक गए । जो जो भोजन इन्हे दिया जाता उसे रेवती पूरा दे ही न पाती कि यह मायाके वलसे वीचसे ही छीन कर साफ कर जाते ।

इस प्रकार क्षुल्लक महाराज सब कुछ खा-पी गए, लेकिन उन्हे सतोष नही हुआ। रेवती इतने पर भी प्रसन्न थी।

अबकी बार क्षुल्लक महाराज साहसके साथ रेवतीसे बोले—माता ! मैंने सम्यक्त्वसे बढ़ी हुई तुम्हारी कीर्ति सुनी और इसीलिए भूखसे पीडित होकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। क्या तुम्हारे हाथके दिए हुए भोजनसे मेरी आत्मा तृप्त हो जायगी ? अभी तो मेरा बिलकुल पेट नही भरा है।

क्षुल्लकको बात सुनकर रेवतीको बडा आश्चर्य हुआ। उसे जरा भी विषाद नही हुआ और वह पुन भोजन कराने के लिए तैयार हो गई। रेवती फिर अनेक प्रकारका भोजन लाई। जिनमे पूडी थी, घी के पुवे थे, माड था, घारिक थे, चिल्लड थे, नमकीन था, मोदक थे। यह सब इसने बड़ी श्रद्धाके साथ दिया और क्षुल्लक महाराज सब खा गए। रेवतीने घडो जल भी दिया। जिसे भी क्षुल्लक जी क्षणभरमे पी गए।

इतना भोजन और अनेक तरहका सरस जल पीकर मायावी क्षुल्लकने वमन कर दी। रेवतीने उस दुर्गन्धित वमन-द्रव्यको अपने हाथसे समेट कर बाहर फेक दिया।

इतने पर भी जब मनोवेगने रेवतीको विनय, वैयावृत्य (परिचर्या) और अमूढता देखी तो उसने क्षुल्लकका वेष त्याग कर अपना सच्चा विद्याधरका रूप दिखलाया।

जब रेवतीने देखा कि इसका वक्षस्थल हारसे सुशोभित हो रहा है। यह स्वर्ण कुण्डल से भासित हो रहा है, दाँतो की कान्तिसे आकाशको धवल कर रहा है और दिव्य रूप धारण किये हुए है तो उसने मनोवेगसे पूछा कि तुम कौन हो और यहा किस कामसे आए हो ?

रेवतीकी बात सुनकर विद्याधरने कहा—मैं विद्याधर

हूँ और मेरा नाम मनोवेग है। मैने ही रुद्र आदि देवोके रूप बनाए थे और मै ही क्षुल्लकका वेप बनाकर तुम्हारी परीक्षा करने आया। मुनिगुप्त आचार्यने भव्यसेनके सम्बन्ध मे जो बतलाया था, उसका भी मैने अनुभव कर लिया और तुम्हारा दर्शन कहा तक सारभूत है यह सब मैने समझ लिया है। उसने आगे कहा–रेवती! मन, वाणी और कर्मपर संयम रखने वाले मुनिगुप्त आचार्यने तुम्हे आशीर्वाद दिया है।

उदारबुद्धि रेवतीने उसके सामने पॉच कदम आगे चल कर विनयके साथ आचार्य मुनिगुप्तके चरणयुगलको शिरसा प्रणाम किया। मनोवेगको यह देख कर बडा सतोष हुआ।

इस प्रकार मनोवेग, रेवतीको अपनी कहानी सुनाकर और उसकी परीक्षा करके अन्तर्धान हो गया।

वहांसे चलकर मनोवेग वहाके विशाल जिनालयमे पहुँचा और उसकी तीन प्रदक्षिणाए देकर जिनेन्द्र भगवानकी स्तुति करने लगा। इसके बाद उसने साधु भव्यसेन आचार्यकी स्तुतिकी और उन जैनी श्रावकोके साथ बैठकर आचार्यका उपदेश सुनने लगा, जिन्होने शास्त्रोके समस्त अर्थोका अच्छी तरह अनुशीलन किया था। मनोवेगने भव्यसेनका उपदेश सुना।

उपदेशके बाद भव्यसेन शौच-निवृत्तिके लिए चले गए। इतनेमे मायावी मनोवेगने विद्याके बलसे ईटाके पिसे हुए चूर्ण को और भस्मको उड़ा दिया। जब भव्यसेन शौचसे लौट कर आए तो उन्होने एक श्रावकसे हाथ धोनेके लिए ईटाका चूर्ण या राख लानेको कहा। आचार्यके कहते ही वह श्रावक सुन्दर मिट्टी ले आया और उनके पास रखकर कहने लगा–महाराज, ईटोका चूर्ण तो मुझे मिला ही नही। लीजिए इस प्रासुक मिट्टीका ही उपयोग कर लीजिए।

आचार्यने मिट्टीको हाथमे ले लिया और पृथिवीकायिक जीवोमे सदिग्ध होकर श्रावकसे कहने लगे—कोई कोई आचार्य पृथिवी आदिमे भी जीव मानते है। इस प्रकार कहकर पृथिवी आदिमे जीवोकी शका होने पर भी आचार्य भव्यसेनने उस मिट्टीसे हाथ धो डाले।

मनोवेगको मालूम हो गया कि रेवती वास्तवमे सच्चे सम्यक्त्वसे भूषित है और भव्यसेनको वस्तुत पृथिवी आदिमे जीव माननेमे सन्देह है। इस प्रकार मालूम करके मनोवेग वहा से चलकर दक्षिण मथुरामे आचार्य मुनिगुप्तके पास पहुचा। वहा पहुचकर उसने आचार्य महाराजकी बार-बार वन्दना की और उनसे वह सारा घटना-चक्र सुनाया। इसके पश्चात् वह अपने स्थानपर चला गया।

अन्य लिङ्गियोकी प्रशसा करनेसे सम्यक्त्व क्षीण होता है। ससारमे विष और अमृतका एक रूप नही हो सकता। ज्ञान, ज्ञानी मुनि, सिद्ध और सिद्धायतन, चारित्र और चारित्रवान् साधु ये छह आयतन है।

जिन और साधुके चरण-कमल तथा धर्म-रेणुकी रसालिनी रेवती विद्याधरकी विडम्बनाओसे मोहित न हो सकी।

इस प्रकार अमूढदृष्टि रेवतीका कथानक समाप्त हुआ।

——००——

८. चेलना महादेवीकी कथा

एक समय इस वसुधातलपर पाटलीपुत्र नामका एक नगर था। इस नगरमे विद्वज्जन रहते थे और यह इन्द्रपुरीके समान सुन्दर था। इस नगरका शासक विशाख था, जो बहुत प्रसिद्ध था और जिसने अपने हाथकी तलवारसे समस्त

शत्रुओंका सहार कर दिया था। विशाखकी प्रियाका नाम विशाखा था। इसके नेत्र कमल-पत्रके समान थे, दोनो हाथ पद्मके सदृश थे और मुख भी कमलके जैसा सुन्दर था।

दोनोंकी ही बहुत दिनोसे अभिलाषा थी कि उन्हे पुत्रकी प्राप्ति हो। सौभाग्यसे उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम वैशाख रक्खा गया। वैशाख बडा विनीत था, गुणोका समुद्र था और उसकी कीर्ति समस्त दिशाओंमे व्याप्त हो चली थी।

कुछ दिनोके बाद वैशाखने कनकश्रीके साथ विधिवत् विवाह कर लिया। कनकश्रीका वर्ण और शरीरकी छवि भी तपे हुए सोनेके समान सुन्दर थी।

एक दिनकी बात है। वैशाख अपने उन्नत मकानपर बैठा हुआ अपनी नवोढा पत्नी कनकश्रीके साथ वार्तालाप करता था और उसे अलङ्कृत कर रहा था। इतनेमे इसके बाल-मित्र मुनिदत्त मुनि आहारके लिए इसके यहा आ पहुचे।

कुमारने जैसे ही मुनिराजको देखा, वह प्रियाके पाससे उठकर चल दिया। मुनिराजके सामने आते ही उसका शरीर आनन्द और भक्तिसे भर उठा। उसने भक्तिपूर्वक मुनिराजको नमस्कार किया और अपने भवनमे ले जाकर अनेक प्रकारका आहार कराया।

मुनिराज आहार करके कुमारके घरसे चल दिए। कुमार भी पत्नीसे पूछकर इनके साथ चल दिया।

वैशाखको बोध हुआ—ससार असार है, शरीर रोगी और नश्वर है। इसलिए उसने शीघ्र ही मुनिदत्तके पाससे दीक्षा ले ली।

जब कनकश्रीको मालूम हुआ कि वैशाख मुनि हो गया है, तो उसे बडा सक्लेश हुआ। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और मरकर वह व्यन्तरी हुई।

व्यन्तरीको विभङ्गावधिसे वैशाखके विहारका पता चल गया और उसे वैशाखपर बडा क्रोध आया। उसने कहा—यह क्रूर मुझे भर जवानीमे छोडकर मुनि हो गया। इसे लज्जा नही आई ! अब देखती हूँ, मेरे क्रोधके सामने यह कैसे तप करता है।

वैशाख मुनि महीनोके उपवाससे खिन्न थे, अकेले विहार करते थे और जब आहारके लिए वे जाते तो उस समय वह व्यन्तरी विक्रियासे उनकी इन्द्रिय बढा देती। मुनिराजको उपसर्ग हो जाता और वे आहार नही लेते। इस प्रकार उपवास करते करते महातपस्वी मुनिको एक महीना बीत गया।

एक दिन विहार करते हुए वैशाख मुनि पारणाके लिए राजगृह नगरमे आए। चेलनाने देखा कि उसके मकानके आगनमे उपवाससे परिश्रान्त एक मुनिराज आए है। वह उठकर खडी हो गई और मुनिराजको पडगाह लिया। इसके बाद जब व्यन्तरीने देखा कि मुनि पारणा लेने तैयार हो गए है तो उसने उनकी इन्द्रिय बढा दी।

चेलनाने देखा कि मुनिपर उपसर्ग आ गया है, उसने तुरन्त भक्तिपूर्वक एक कपडेका पर्दा कर दिया, जिससे लोग मुनिराजका अवर्णवाद न करे। वैशाखने आहार ले लिया, किन्तु उनके मनमे बडा वैराग्य हुआ। चेलनाने वैशाखकी बडी वन्दना की और वह वहासे चल दिए।

वैशाख मुनि विपुलाचल पर्वतपर पहुचे। उन्होने वहा ध्यानके द्वारा घातिया कर्मोका नाश कर दिया और उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया।

सहसा इन्द्रोके आसन कपे और उन्हे मालूम हुआ कि बैशाख मुनिको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इन्द्र देवताओके साथ मस्तक पर हाथ रक्खे हुए स्वर्गसे चले और यहा आकर केवलीकी अक्षत, पुष्प, आदिसे पूजा की।

जब चेलनाको मालूम हुआ कि बैशाख मुनिको केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ है तो वह अपने समस्त परिजनके साथ उनकी बन्दना करनेके लिए चल दी। चेलनाने विपुलाचल पर पहुंच कर, केवली भगवान्को भक्तिके साथ नमस्कार किया। इसके बाद उसने उस देवसभामे केवलीसे पूछा— भगवन्! आप यह तो बतलाइए कि उस दिन आहार लेते समय आपको वह उपसर्ग किस कारणसे हुआ था?

चेलनाका प्रश्न सुनकर केवली कहने लगे—एक कनकश्री नामकी अतिक्रूर और चपल नेत्रवाली कन्या थी। मैने गृहस्थ-अवस्थामे अत्यन्त अनुरागके साथ उससे विवाह किया। परन्तु यह कनकश्री सर्पिणीके समान भयकर निकली। एक दिनकी बात है। मुनिदत्त नामके मुनि विहरते हुए पारणाके लिए मेरे यहा आए। वे मेरे बाल्य-अवस्थाके मित्र थे। मैने उन्हे खूब प्रसन्नताके साथ आहार कराया। मै कनकश्रीसे पूछकर मुनिके साथ चला गया। थोडी दूर चलने पर मै उनके पास दीक्षित होगया। जब कनकश्रीने सुना कि मैने दीक्षा लेली है तो उसे बडा क्रोध आया—और तत्क्षण मिथ्यात्वके साथ मरकर भयानक व्यन्तरी हुई। विभङ्ग ज्ञानसे उसे पता चला कि मै तपस्या कर रहा हू, तो उसने मेरी इन्द्रिय बढा दी। जब एक महीनेके उपवासके बाद, मै तुम्हारे यहा आहार लेने पहुचा और आहार लेने खडा ही था कि उसीने मेरी इन्द्रिय बढा दी थी। वह तो तुम धर्मात्मा थी जिसने मुझे एक माहका उपोषित समझ कर उपसर्ग आया हुआ जान परदा द्वारा उसको दूर कर दिया था। उपसर्ग दूर होजाने

से मैंने तुम्हारे यहा आहार ले लिया और इस पर्वतपर ध्यान लगाकर कायोत्सर्ग करने लगा । मैंने ध्यानाग्निसे घातिया कर्मरूपी इधन जला डाला और मुझे लोक और अलोकके प्रकाशक केवल ज्ञानकी प्राप्ति हो गई ।

तपस्या करनेकी दृष्टिसे सात दिनमे ही मैंने नवयुवती और नवोढा कनकश्रीको छोड दिया था । इस सक्लेशके कारण यह मिथ्यात्वी हुई, मरकर व्यन्तरी हुई और इसीने वह उपसर्ग किया था । हे भद्रे, सम्यग्दृष्टी और उपगूहन करनेवाली तुमने मुझसे जो प्रश्न किया, उसके सम्बन्धमें मैंने सब कुछ बतला दिया है ।

इस प्रकार केवलीने जब अपना वृतान्त सुनाया तो सुर और असुरोको भी बडा आश्चर्य हुआ और उन्होने केवलीको नमस्कार किया । इन्द्र आदिक देवोने और चेलना आदिने एक बार फिर केवली भगवान्‌को नमस्कार किया और सब अपने अपने स्थानपर चले गए ।

वैशाख केवलीने जली हुई रस्सीके समान निष्क्रिय शेष कर्मोका भी नाश कर दिया और वे अनन्त सुख-सम्पन्न मोक्षमे विराजमान होगए ।

जिस प्रकार चेलनाने उपगूहन अङ्गका पालन किया उसी प्रकार प्रत्येक गृहस्थका कर्त्तव्य है कि वह किसी भी धर्मात्माका उपगहन करता रहे ।

इस प्रकार चेलना महादेवीका उपगूहनाख्यान समाप्त हुआ ।

——०——

९. श्रेणिक राजाकी कथा

मगधदेशमे राजगृह नामका नगर था । यह नगर वहुत विभूतिसे सम्पन्न था आर शोभामे कुबेरकी नगरी अलका

के समान मालूम होता था । उस नगरका शासक श्रेणिक था । श्रेणिककी बुद्धि बडी निर्मल थी, वह सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न था और अपने प्रतापसे उसने समस्त शत्रुओको पराभूत कर रक्खा था । उसकी पत्नीका नाम चेलना था । चेलना रुपवती थी, यौवनवती थी, उसके नेत्र कमलके समान थे और वह सम्यग्दृष्टी थी ।

एक बार सौधर्म स्वर्गके इन्द्र अपनी देव सभामे सज्जनो को मनोरजक कथाएँ कह रहे थे । इसी प्रसगमे इन्द्रने कहा कि सम्पूर्ण मनुष्यलोकमे श्रेणिकको छोड़कर अन्य कोई प्राणी नही है, जिसके इस प्रकारका क्षायिक सम्यक्त्व हो ।

इन्द्रके मुखसे उत्कृष्ट सम्यक्त्वकी प्रशसा सुन कर एक अत्यन्त ईर्ष्यालु देव श्रेणिककी नगरीमे आया । उसने मुनिका वेष बनाया और उस नगरीके तालावमे एक वड़ा जाल डाल कर वह मछलिया पकडने लगा ।

इसी बीचमे श्रेणिक राजा चतुरङ्ग सेनाके साथ सरोवर की शोभा देखने वहाँ आए । जैसे ही श्रेणिक कुछ दूर आगे गए, उन्हे तालावक पास मे एक मुनिराज दिखलाई दिये । श्रेणिकने देखा कि वह हाथसे मछलिया पकडकर जमीनपर छोड देते है और फिर बडी प्रसन्नताके साथ उन्हे टोकरी मे रख लेते है । राजा सदैव जिनाज्ञा पालन करनेमे उद्यत रहते थे । इन मुनिराज को देख कर दूर से ही हाथीसे उतर पडे । उन्होने भक्तिके साथ मुनिराजकी तीन प्रदक्षिणाएँ की और हाथ जोडकर नमस्कार किया । इसके बाद घुटने टेककर प्रसन्नताके साथ उसकी बदना की । श्रेणिक मुनि-राजके सामने ठहर गये, शरीर विनयसे झुक गया और वह वीर, धीर और गभीर वाणीमे कहने लगे—हे मुनिराज, इस वेषसे तो मोक्षमार्गमे प्रवृत्ति की जाती है, इसको धारण करके ससार-बधकी कारण मछलिया मारना ठीक नही है ।

श्रेणिककी बात सुनकर मुनिराजने कुछ नहीं कहा। केवल कौतूहल वश उसे जाल सौंप दिया।

राजाने पवित्र बुद्धिके साथ जैसे ही तालाबमें जाल डाला, मुनिके मनमे बडा विस्मय हुआ और उन्होने श्रेणिकको तुरत रोक दिया। मुनिराज कहने लगे—राजन्! मुझे मछलियोंसे कोई प्रयोजन नही है। मै समझ गया तुमने जिन शासनके महत्त्वको खूब समझा है। उठो और अपने घर जाओ।

श्रेणिकने मछलियां और जाल किसी दूसरेके हाथमे थमाया और अपने घर चले आये।

जैसे ही श्रेणिक अपने भवनमे जाकर सिंहासन पर बैठे, उन्हे मनुष्योंका महान् कोलाहल सुनाई दिया। लोग कह रहे थे वहाँ जैन मुनि कैसे अपने हाथसे जाल द्वारा मछलिया पकडता है और यह श्रेणिक कैसा बुद्धिभ्रष्ट हो गया जो इस प्रकारके मुनिकी भी भक्ति करता है। श्रेणिक अपने वडे वडे और दूसरे समस्त सामन्तों पर क्रोध भी करते है—शासन भी करते है। फिर इतने मूढ कैसे हो गये जो उन्होंने इस प्रकारका कार्य कर डाला।

राजा श्रेणिकने अपने सामन्तोके द्वारा सुना कि लोग इस प्रकारसे जिन शासनमें दूपण लगा रहे है। श्रेणिकने अपने मनमें सोचा अव इनके साथ कोई ऐसा विनोद करना चाहिये जिसमें यह लोग मुग्ध हो जावे और चुप हो जावें।

प्रत्युत्पन्नमति राजाने जिन शासनकी निन्दा करने वाले गाँव और देशके राजाओको बुलाया और उन्हे वे शासन पत्र दिये गये जो बाहरसे अत्यत दुर्गन्धित अशुचि पदार्थसे लिपटे हुये थे।

राजाओने उन दुर्गन्धित शासन-पत्रोंको अपने हाथमे लिया और उनपर पुष्प-गंध छिड़ककर उन्हे मस्तक पर रख लिया।

जैसे ही यह राज-समूह इन अशुचिद्रव्यसे लिपटे दुर्गंधित शासन-पत्रोको अपने मस्तकपर रखने लगा, राजाने कहा—आप लोग बतलाइये—आप अशुचिद्रव्यसे लिपटे हुये दुर्गंधित शासन-पत्रके बडलको क्यों अपने सिर पर रख रहे हैं ?

श्रेणिककी बात सुनकर समस्त राजा कहने लगे—महाराज आपके प्रसादसे यह अशुचि पदार्थ भी हमारे मस्तकपर कुकुम जैसा मालूम हो रहा है । इतना कहकर सब राजाओने अपने हाथ जोड लिये और श्रेणिककी बात सुननेके लिये सावधान हो गये । श्रेणिक फिर कहने लगे—जिस प्रकार आप लोगोने हमारी ओरसे दिये गये अशुचिद्रव्यसे दूषित शासन-पत्रको बडी विनयके साथ अपने शिरपर रक्खा, उसी प्रकार मैंने भी जिन-भक्तिसे मुनिरूपका अनुकरण करने वाले और मछलिया पकड़ने वाले साधूकी बदना करली तो इसमें क्या हानि हो गई ?

श्रेणिक इस प्रकारसे इन राजाओंको समझा ही रहे थे कि इतनेमे धीमरका वेष-धारण करने वाला वह मुनि दिव्यरूप धारण करके सबके सामने जा उपस्थित हुआ । उसका वक्षस्थल हारसे सुशोभित हो रहा था और वह कानोंमे कुंडल पहने हुये था । वह सभाके बीचमे आकर हँसता हुआ श्रेणिकसे कहने लगा । राजन्, इद्रने अपनी देव-सभामे यह कहा था—यदि भूतल पर शङ्कादिदोषोंसे रहित और सूर्यकी किरणोके समान उज्ज्वल सम्यक्त्व किसीके है तो वह श्रेणिक ही है । इन्द्रकी वह वाणी सुनकर मुझे बड़ी ईर्ष्या हुई और मै आपके पास चला आया । मैंने आपकी परीक्षा करनेके लिये ही धीमरका रूप वनाया और इस समय आपकी परीक्षा करके मेरा सदेह दूर हो गया । उस देवने इन्द्रके द्वारा प्रशसित श्रेणिकके लिये मोतियोंका धवल हार दिया, जिसकी किरणोंसे अधकार मारा मारा भाग रहा था और वह अपने स्थानपर चला गया ।

जब लोगोने श्रेणिककी उत्कृष्ट जिन भक्ति देखी, देव द्वारा हारका समर्पण करना सुना और सुना कि पृथ्वीपर रहने वाले भी श्रेणिककी इद्र तक प्रशसा करते है तो कुछ लोग वाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह छोडकर और महाव्रत धारण कर धीर श्रमण हो गये । कोई श्रावक हो गये और कोई सम्यक्त्व की प्राप्तिसे ही सतुष्ट हो गये तथा कोई जि'नाथके शासन का गुण-गान करने लगे ।

जिस प्रकार सच्चे सम्यक्त्वसे विभूषित होकर श्रेणिक राजाने इद्रनकसे समान प्राप्त किया उसी प्रकार दूसरे प्राणियों को भी श्रेणिक जैसी अपनी प्रवृत्ति करनी चाहिये ।

इस प्रकार सम्यक्त्वसे समन्वित श्रेणिक द्वारा आचरित उपगूहनका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

—— o:——

१०. सोमशर्मा और वारिषेण की कथा

राजगृह नगरमे श्रेणिक नामके राजा रहते थे । इनकी चेलना नामकी स्त्री थी । चेलना बहुत सुन्दर थी और स्त्री गुणोकी भण्डार थी । उन दोनोके वारिषेण नामका पुत्र था । वारिषेण सम्यदृष्टी था, बारह प्रकारके अणुव्रतोका पालन करता था और गुणोका सागर था। वह चारो ही पर्वोमे प्रोषध रखता और रातमे सिर्फ एक वस्त्र पहिन कर आतापन योग किया करता था ।

इस ही नगरमे एस प्रसिद्ध चोर रहता था। इसे अनेक प्रकारके आजन और गुटकादिके प्रयोग सिद्ध थे और यह इनमे बडा कुशल था। इसकी प्रियाका नाम कामलता था । यह वेश्या थी और कामिरूपी मृगोको फसानेमे जालके समान थी ।

एक दिन चेलना रानी उस सुर-प्रदत्त अमूल्य हारको पहिन